गोरा
अध्याय 14

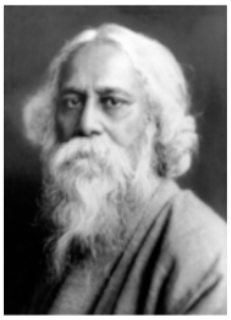

रविंद्रनाथ टैगोर

हिन्दी ADDA

गोरा

अध्याय 14

https://www.hindiadda.com/gora-part-xiv/

परेशबाबू के पास जाकर ललिता बोली, "हम लोग ब्रह्म हैं इसीलिए कोई हिंदू लड़की हम दोनों से पढ़ने नहीं आती- अत: मैं सोचती हूँ, हिंदू-समाज से किसी को भी शामिल करने से सुविधा रहेगी। क्या राय है, बाबा?"

परेशबाबू ने पूछा, "हिंदू-समाज में से किसी को पाओगी कहाँ?"

ललिता आज बिल्कुल कमर कसकर आई थी, फिर भी विनय बाबू का नाम लेने में उसे लज्जा हो आई, जबरदस्ती उसे हटाती हुई बोली, "क्यों,क्या कोई नहीं मिलेगा? यही विनय बाबू हैं या.... " यह 'या' एक बिल्कुल व्यर्थ शब्द था-एक अव्यय का निरा अव्यय, वाक्य अधूरा ही रह गया।

परेशबाबू बोले, "विनय! विनय क्यों राज़ी होंगे?"

ललिता के अभिमान को ठेस लगी। विनय बाबू राज़ी नहीं होगे? ललिता अच्छी तरह समझती हैं कि विनय बाबू को राज़ी करना ललिता के लिए असंभव नहीं है।

ललिता ने कहा, "वह, राज़ी हो भी सकते हैं।"

थोड़ी देर चुप रहकर परेशबाबू बोले, "सारी बात सोचकर देखने पर वह कभी राज़ी नहीं होंगे।"

ललिता के कान लाल हो गए। वह ऑंचल में बँधा हुआ चाभियों का गुच्छा लेकर झुलाने लगी।

मुश्किल में पड़ी हुई अपनी लड़की के चेहरे की ओर देखकर परेशबाबू का हृदय दुखी हो उठा। लेकिन सांत्वना का कोई शब्द उन्हें ढूँढ़े न मिला। थोड़ी देर बाद ललिता ने धीरे-धीरे मुँह उठाकर कहा, "बाबा, तब हमारा यह स्कूल क्या किसी तरह नहीं चल सकेगा?"

परेशबाबू ने कहा "अभी तो चलने में बहुत बाधाएँ दीखती हैं। कोशिश करते ही बहुत-सी अप्रिय चर्चाएँ उठेंगी।"

अंत में पानू बाबू की जीत होगी और अन्याय के सामने चुपचाप हार मान लेनी पड़ेगी- इससे बड़ा दु:ख ललिता के लिए और कुछ नहीं हो सकता। इस मामले में वह अपने पिता के अलावा और किसी का शासन पल-भर के लिए भी न मानती। किसी कटुता से वह नहीं डरती, लेकिन अन्याय को कैसे सह ले? धीरे-धीरे उठकर वह

परेशबाबू के पास से चली गई। अपने कमरे में पहुँचकर उसने देखा, डाक से उसके नाम की एक चिट्ठी आई है। लिखावट से उसने पहचाना, उसकी बचपन की सखी शैलबाला की चिट्ठी है। शैलबाला का विवाह हो चुका है, पति के साथ बाँकीपुर रहती है।

चिट्ठी में लिखा था-

"तुम लोगों के बारे में तरह-तरह की बातें सुनकर मन बहुत बेचैन हो रहा था। बहुत दिनों से सोच रही थी, चिट्ठी लिखकर हाल-चाल पूछूँ। लेकिन समय ही नहीं मिल पा रहा थ। किंतु परसों एक आदमी से (उसका नाम नहीं बताऊँगी) जो सब समाचार मिले उनसे तो मानो सिर पर गाज गिरी। ऐसा संभव हो सकता है, यह तो मैं सोच भी नहीं सकती। लेकिन जिन्होंने लिखा है उन पर विश्वास न करना भी कठिन है। सुनती हूँ कि तुम्हारी किसी हिंदू युवक के साथ विवाह की संभावना हो रही है। अगर यह बात सच हो तो.... " इत्यादि, इत्यादि।

ललिता का सारा शरीर क्रोध से जल उठा। वह पल-भर भी रुक न सकी, उसने तत्काल चिट्ठी का उत्तर लिखा-

"खबर सच है कि नहीं, यह जानने के लिए तुमने मुझसे सवाल पूछा है, मुझे तो इसी पर विस्मय हो रहा है। ब्रह्म-समाज के आदमी ने तुम्हें जो खबर दी उसकी सच्चाई की भी पड़ताल करनी होगी! इतना अविश्वास? फिर, किसी हिंदू युवक से मेरे विवाह की संभावना हो रही है, इस खबर से तुम्हारे सिर पर गाज गिरी है, लेकि मैं तुम्हें निश्चय पूर्वक कह सकती हूँ कि ब्रह्म-समाज में भी ऐसे-ऐसे सुविख्यात सीधे युवक हैं जिनसे विवाह की आशंका वज्र गिरने के समान भयानक है, और मैं दो-एक ऐसे हिंदू युवकों को जानती हूँ जिनके साथ विवाह किसी भी ब्रह्म-कुमारी के लिए गौरव की बात हो सकती है। इससे ज्यादा कोई भी बात मैं तुमसे नहीं कहनी चाहती।"

इधर परेशबाबू का काम उस दिन के लिए रुक गया। वह चुपचाप बैठे बहुत देर तक सोचती ही रहे फिर धीरे-धीरे सुचरिता के घर जा पहुँचे। परेशबाबू का चिंतित मुँह देखकर सुचरिता का हृदय व्याकुल हो उठा। उनकी चिंता का क्या कारण है यह जानती थी और इसी चिंता के कारण स्वयं भी कई दिन से उद्विग्न थी। सुचरिता के साथ अकेले कमरे में बैठकर परेशबाबू बोले, "बेटी, ललिता के बारे में सोचने का समय आ गया है।"

सुचरिता ने अपनी करुणा-भरी ऑखें परेशबाबू के चेहरे पर टिकाकर कहा, "जानती हूँ, बाबा।"

परेशबाबू ने कहा, "मैं समाज की निंदा की बात नहीं सोच रहा। मैं सोच रहा हूं- अच्छा, ललिता क्या....?"

सुचरिता ने परेशबाबू का संकोच देखकर स्वयं ही उनकी बात स्पष्ट कर देने की कोशिश की। बोली, "ललिता हमेशा मुझे अपने मन की बात बताती रही है। लेकिन कुछ दिन से वह मुझसे वैसी खुलती नहीं है। मैं समझ सकती हूँ कि.... "

बीच ही में परेशबाबू बोले, "ललिता के मन में कोई ऐसा भाव पैदा हुआ है जिसे वह अपने सामने भी स्वीकार करना नहीं चाहती। मैं सोच नहीं पाता कि क्या करने से उसका हित होगा- तुम्हारी क्या राय है, विनय को हमारे परिवार में आने-जाने देने से ललिता का कोई अनिष्ट हुआ है?"

सुचरिता ने कहा, "बाबा, तुम तो जानते हो कि विनय बाबू में कोई बुराई नहीं है- उनका चरित्र निर्मल है, उन जैसे चरित्र का भद्र पुरुष बहुत कम मिलता है।" परेशबाबू को जैसे कोई नई बात मालूम हुइ हो। वह बोल उठे, "ठीक कहती हो राधो ठीक कहती हो। वह अच्छे आदमी हैं कि नहीं,यही देखने की बात है, अंतर्यामी ईश्वर भी उतना ही देखते हैं। विनय अच्छा आदमी है, उसे पहचानने में मैंने भूल नहीं की, इसके लिए मैं उन्हें बारंबार प्रणाम करता हूँ।"

मानो एक फंदा कट गया और परेशबाबू उससे छुटकारा पा गए। उन्होंने देवता के निकट कोई अपराध नहीं किया। ईश्वर जिस तुला पर मनुष्य को तोलते हैं, उन्होंने सदा धर्म की उसी तुला को माना है, उस पर उन्होंने अपने समाज के बनाए हुए कोई नकली बाट नहीं रखे, यह सोचकर उनके मन की ग्लानि दूर हो गई। अब तक इस इतनी सीधी बात को न समझकर वह क्यों इतना दु:ख पा रहे थे, इसी पर उन्हें आश्चर्य हो उठा। उन्होंने सुचरिता के सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "आज तुमसे मुझे एक सीख मिली, बेटी!"

सुचरिता ने तत्काल उनके पैर छूते हुए कहा, "नहीं-नहीं बाबा, यह तुम क्या कह रहे हो!"

परेशबाबू ने कहा, "सम्प्रदाय ऐसी चीज़ है बेटी कि लोगों को यह जो सबसे सीधी बात है कि इंसान इंसान है, यही भुला देता है। इंसान ब्रह्म है कि हिंदू, समाज की रची हुई

इस बात को विश्व-सत्य से बड़ा बनाकर एक व्यर्थ का झमेला खड़ा कर देती है। अब तक मैं इसी झूठ के भँवर में फँसा हुआ था।"

परेशबाबू थोड़ी देर चुप रहकर बोले, "ललिता अपना लड़कियों का स्कूल चलाने का संकल्प छोड़ नहीं पा रही है। इसके लिए उसने विनय से मदद लेने के बारे में मेरी राय पूछी थी।"

सुचरिता ने कहा, "नहीं बाबा, अभी कुछ दिन रहने दीजिए।"

ललिता को उनके मना करते ही वह अपने आहत हृदय का आवेग दबाकर जैसे उठकर चली गई थी, उसकी याद परेशबाबू के स्नेह-भरे हृदय को बराबर कष्ट पहुँचा रही थी। वह जानते थे कि उनकी तेजस्विनी कन्या ललिता को समाज के उत्पीड़न और अन्याय से उतना कष्ट नहीं हुआ था जितना उस अन्याय के विरुध्द संग्राम करने में बाधा पाने से- विशेषकर पिता से बाधा पाने से। इसीलिए वह चाहते थे कि किसी तरह अपनी मनाही उठा लें। वह बोले, "क्यों राधो, अभी रहने क्यों दें?"

सुचरिता ने कहा, "नहीं तो माँ को बहुत बुरा लगेगा।"

विचार करके परेशबाबू ने देखा कि यह बात तो ठीक है।

सतीश ने कमरे में आकर सुचरिता के कान में कुछ कहा। सुचरिता ने उसे उत्तर दिया, "नहीं भई बक्त्यार खाँ, अभी नहीं। कल देखा जाएगा।"

सतीश ने चकित होकर कहा, "कल तो मेरा स्कूल है।"

स्नेह से हँसकर परेशबाबू ने पूछा, "क्यों सतीश क्या, चाहिए?"

सुचरिता ने कहा, "उसका एक.... "

हड़बड़ाकर सतीश ने सुचरिता का मुँह हाथ से बंद करते हुए कहा, "नहीं-नहीं, बताना मत, बताना मत!"

परेशबाबू ने कहा, "अगर छिपाने की बात होगी तो सुचरिता बताएगी ही क्यों!"

सुचरिता ने कहा, "नहीं बाबा, यह तो बहुत चाहता है कि यह छिपाने की बात किसी तरह आपके कानों में पड़ जाय!"

चिल्लाकर सतीश ने कहा, "कभी नहीं-बिल्कुल नहीं!" और बाहर भाग गया।

बात यह थी कि जिस लेख की विनय ने प्रशंसा की थी वही वह सुचरिता को दिखाना चाहता था। कहने की जरूरत नहीं कि परेशबाबू के सामने सुचरिता को इसकी याद दिलाने का जो उद्देश्य था वह सुचरिता ने ठीक-ठीक समझ लिया था। मन की ऐसी गुप्त बातें भी इस दुनिया में इतनी आसानी से भाँप ली जाती हैं, बेचारा सतीश यह नहीं जानता था।

47.चार दिन बाद हरानबाबू एक चिट्ठी हाथ में लिए वरदासुंदरी के पास आ पहुँचे। परेशबाबू से कोई आशा करना आजकल उन्होंने बिल्कुल छोड़ दिया था।

हरानबाबू वरदासुंदरी के हाथ में चिट्ठी देकर बोले, "मैंने शुरू से ही आप लोगों को सावधान कर देने की बड़ी कोशिश की थी और इसके लिए आपकी नाराज़गी भी झेली थी। अब आप इस चिट्ठी से ही समझ सकेंगी कि भीतर-ही-भीतर मामला कहाँ तक बढ़ गया है।"

शैलबाला के नाम ललिता ने जो चिट्ठी लिखी थी वही वरदासुंदरी ने पढ़ डाली। पढ़कर बोलीं, "मैं कैसे जान सकती थी, आप ही बताइए! जो कभी सोचा भी नहीं था वही हो रहा है। लेकिन मुझे इसके लिए दोष मत दीजिएगा, यह मैं कहे देती हूँ। आप सबने ही मिलकर सुचरिता की प्रशंसा कर-करके उसका सिर फिरा दिया-कि ब्रह्म-समाज में ऐसी दूसरी लड़की ही नहीं है- अब अपनी उस आदर्श ब्रह्म लड़की की कीर्ति सँभालिए न! विनय और गौर को तो यही इस घर में लाए। विनय को तो फिर भी मैंने बहुत-कुछ हम लोगों के पथ की ओर खींच लिया था, फिर न जाने कहाँ से उन्होंने उसकी एक मौसी को लाकर हमारे ही घर में ठाकुर-पूजा शुरू करा दी। विनय को भी ऐसा भरमा दिया कि अब तो वह मुझे देखते ही भाग खड़ा होता है। अब यह सब जो हो रहा है आपकी वही सुचरिता ही इसकी जड़ में है। वह कैसी लड़की है यह तो शुरू से ही मैं जानती थी, लेकिन मैंने कभी कोई बात नहीं कही, बराबर उसे ऐसे ही पालती-पोसती रही कि कोई यह न समझ सके कि वह मेरी अपनी लड़की नहीं है। आज उसका यह फल मिला! अब मुझे यह चिट्ठी दिखाकर क्या होगा- आप लोग ही अब जो ठीक समझें करें।"

एक समय हरानबाबू ने वरदासुंदरी को समझने में भूल की थी, आज यह बात स्पष्ट स्वीकार करते हुए बड़ी उदारता के साथ उन्होंने इस पर खेद प्रकट किया। अंत में परेशबाबू को बुलाया गया।

"लो, देख लो", कहते हुए वरदासुंदरी ने चिट्ठी उनके सामने मेज़ पर पटक दी। परेशबाबू ने दो-तीन बार चिट्ठी पढ़कर कहा, "तो क्या हुआ?"

उत्तेजित होकर वरदासुंदरी ने कहा, "क्या हुआ! इससे अधिक और क्या चाहते जो हो जाय? और बाकी ही क्या रहा है! मूर्ति-पूजा, जाति-पाँति,छुआ-छूत, सभी तो हो गया। अब बस अपनी लड़की को हिंदू के घर ब्याह देना ही बाकी रह गया है। इसके बाद प्रायश्चित करके तुम भी हिंदू-समाज में जा बैठना-लेकिन मैं कहे देती हूँ.... "

थोड़ा हँसकर परेशबाबू ने कहा, "तुम्हें कुछ भी कहना नहीं होगा- कम-से-कम अभी तो कह देने का समय नहीं है। प्रश्न यह है कि तुम लोगों ने कैसे तय कर लिया कि हिंदू े घर ललिता का विवाह तय हो गया है। इस चिट्ठीमें तो ऐसी कोई बात नहीं दीखती।"

वरदासुंदरी ने कहा, "क्या होने से तुम्हें कुछ दीखता है, यह तो मैं आज तक नहीं समझ पाई। समय रहते देख पाते तो आज यह झंझट न उठ खड़ा हुआ होता। चिट्ठी में कोई इससे स्पष्ट और क्या लिख सकता है भला?"

हरानबाबू ने कहा, "मैं समझता हूँ, ललिता को यह चिट्ठी दिखाकर पूछना चाहिए कि उसकी इच्छा क्या है। आप लोग अनुमति दें तो मैं ही उससे पूछ सकता हूँ।"

इसी समय ऑंधी की तरह कमरे में आकर ललिता ने कहा, "बाबा, यह देखो, आजकल ब्रह्म-समाज से ऐसी गुमनाम चिट्ठियाँ आती हैं!"

परेशबाबू ने चिट्ठी पढ़ी। विनय के साथ ललिता का विवाह गुप्त रूप से तय हो चुका है, यह मानकर चिट्ठी लिखने वाले ने अनेकों फटकार और उपदेशों से चिट्ठी भर दी थी। साथ ही इसकी भी चर्चा थी कि विनय की नीयत अच्छी नहीं है और दो दिन बाद ही वह अपनी ब्रह्म पत्नी को छोड़कर फिर हिंदू घर में विवाह कर लेगा।

परेशबाबू के पढ़ चुकने पर चिट्ठी हरान ने लेकर पढ़ी। बोले, "ललिता, यह चिट्ठी पढ़कर तो तुम्हें गुस्सा आ रहा है। लेकिन ऐसी चिट्ठी लिखने का कारण क्या है, यह तुमने नहीं सोचा। तुम ही अपने हाथ से यह चिट्ठी कैसे लिख सकीं, बताओ तो?"

क्षण-भर स्तब्ध रहकर ललिता बोली, "तो शैल के साथ इस बारे में आप ही की चिट्ठी-पत्री हो रही है?"

सीधे जवाब न देकर हरानबाबू ने कहा, "ब्रह्म-समाज के प्रति अपना कर्तव्य सोचकर तुम्हारी यह चिट्ठी शैल ने विवश होकर ही मुझे भेजी है।"

ललिता ने सीधी खड़ी होकर कहा, "अब ब्रह्म-समाज क्या कहना चाहता है, कहिए।"

हरान बोले, "विनय बाबू और तुम्हारे बारे में समाज में जो यह चर्चा हो रहा है, उस पर मैं तो बिल्कुल विश्वास नहीं करता, लेकिन फिर भी तुम्हारे मुँह से मैं उसका स्पष्ट प्रतिवाद सुनना चाहता हूँ।"

ललिता की ऑखें सुलगने लगीं। काँपते हाथों से कुर्सी की पीठ पकड़कर उसने कहा, "क्यों, बिल्कुल विश्वास नहीं कर सकते?"

ललिता की पीठ पर हाथ फेरते हुए परेशबाबू बोले, "लज्जित, अभी तुम्हारा मन स्थिर नहीं है, यह बात मेरे साथ फिर होगी-अभी रहने दो।"

हरान ने कहा, "परेशबाबू, आप बात को दबाने की कोशिश न करें।"

ललिता ने फिर भड़ककर कहा, "बाबा दबाने की कोशिश करेंगे? आप लोगों की तरह बाबा सच्चाई से नहीं डरते-सत्य को वह ब्रह्म-समाज से भी बड़ा मानते हैं। मैं आप से स्पष्ट कहती हूँ, विनय बाबू से विवाह को मैं ज़रा भी असंभव या अनुचित नहीं मानती।"

हरान बोल उठे, "लेकिन यह क्या तय हो गया है कि वह ब्रह्म-धर्म की दीक्षा ले लेंगे?"

ललिता ने कहा, "कुछ भी तय नहीं हुआ है, और उन्हें दीक्षा लेनी ही होगी, ऐसा भी क्या ज़रूरी है!"

अब तक वरदासुंदरी कुछ नहीं बोली थी। वह मन-ही-मन चाह रही थी कि आज हरानबाबू की जीत हो और परेशबाबू को अपना दोष स्वीकार करके लज्जित होना पड़े। अब वह और नहीं रह सकीं, कह उठीं, "ललिता, तू पागल हो गई है क्या? क्या कह रही है?"

ललिता ने कहा, "नहीं माँ, यह पागल की बात नहीं है- जो कह रही हूँ सोच-समझकर कह रही हूँ। चारों ओर से मुझे ऐसे बाँधना चाहेंगे तो मैं नहीं सह सकूँगी- हरानबाबू के इस समाज से मुक्ति पा लूँगी।"

रान ने कहा, "उच्छृंखलता को ही तुम मुक्ति कहती हो?"

ललिता ने कहा, "नहीं, नीचता के आक्रमण से, झूठ की गुलामी से मुक्ति को ही मैं मुक्ति कहती हूँ। जहाँ मैं कोई अन्याय, कोई अधर्म नहीं देखती, वहाँ ब्रह्म-समाज मुझे क्यों छेड़े, क्यों रोके?"

स्पर्धा दिखाते हुए हरान ने कहा, "देख लीजिए, परेशबाबू! मैं जानता था कि अंत में ऐसी ही कुछ कांड होगा। मैं तो जहाँ तक हो सका आपको सावधान करने की कोशिश करता रहा, लेकिन नतीजा कुछ नहीं हुआ।"

ललिता ने कहा, "देखिए पानू बाबू, आपको भी एक जगह सावधान करने की ज़रूरत है- जो आप से हर बात में कहीं बड़े हैं उनको सावधान करने चलने का घमंड आप न करें।" इतना कहकर ललिता क्या हुआ जा रहा है! अब क्या करना होगा, ज़रा बैठकर सोचो।"

परेशबाबू ने कहा, "जो कर्तव्य है वही करना होगा, और क्या? लेकिन ऐसे जल्दबाज़ी में सोचने से कर्तव्य स्थिर नहीं होता। मुझे क्षमा करो, इस बारे में अभी कुछ मत कहो- मैं ज़रा अकेला रहना चाहता हूँ।"

48.ललिता ने यह क्या परेशानी खड़ी कर दी, सुचरिता बैठकर यही सोचने लगी। थोड़ी देर चुप रहकर ललिता के गले में बाँह डालकर बोली, "लेकिन भई,मुझे तो डर लगता है।

ललिता ने पूछा, "किसका भय?"

सुचरिता बोली, "ब्रह्म-समाज में चारों तरफ हलचल मच गई है- लेकिन अंत में विनय बाबू अगर राज़ी न हुए तो?"

सिर झुकाकर ललिता ने दृढ़ता से कहा, "वह ज़रूर राज़ी होंगे।"

सुचरिता ने कहा, "तू तो जानती है, माँ को पानू बाबू यही भरोसा दे गए हैं कि विनय अपना समाज छोड़कर विवाह करने को कभी राज़ी नहीं होगा। ललिता, क्यों तूने सब बातें सोचे बिना पानू बाबू से ऐसी बात कह डाली!"

ललिता ने कहा, "मैंने जो कहा, उसके लिए अब भी मुझे कोई पछतावा नहीं है। पानू बाबू समझे थे, वह और उनका समाज मुझे शिकार के जानवर की तरह घेरे में

डालकर बिल्कुल अतल समुद्र के किनारे तक ले आए हैं, वहाँ मुझे पकड़े जाना ही होगा। किंतु वह नहीं जानती कि मैं इस समुद्र में कूद पड़ने से नहीं घबराती बल्कि उनके शिकारी कुत्तों से घिरकर उनके पिंजरे में घुसते ही घबराती हूँ।"

सुचरिता ने कहा, "क्यों न एक बार बाबा से सलाह करके देखा जाय?"

ललिता ने कहा, "शिकारियों का साथ बाबा कभी नहीं देंगे, यह मैं निश्चय से कह सकती हूँ। उन्होंने तो कभी हमें बाँधकर रखना नहीं चाहा। जब कभी उनकी राय से हमारी राय कुछ भिन्न हुई है, तब क्या वह हम पर ज़रा भी नाराज़ हुए हैं? ब्रह्म-समाज के नाम की दुहाई देकर उन्होंने कभी हमारा मुँह बंद करने की कोशिश की है? इस पर माँ कितनी बार बिगड़ी है, लेकिन बाबा को यही एक भय रहा है कि कहीं हम लोग खुद सोचने का साहस न खो दें। जब उन्होने इस तरह सीख देकर हमें बड़ा किया है, तब क्या अंत में पानू बाबू जैसे समाज के जेल-दारोगा के हाथ हमें सौंप देंगे?"

सुचरिता ने कहा, "चलो, मान लो कि बाबा कोई बाधा नहीं देते, फिर तू क्या करेगी बता?"

ललिता ने कहा, "अगर तुम लोग कोई कुछ नहीं करोगे तो फिर मैं ही.... "

घबराहर सुचरिता ने कहा, "नहीं-नहीं, तुझे कुछ नहीं करना होगा, भई! मैं कुछ उपाय करती हूँ।"

सुचरिता परेशबाबू के पास जाने की तैयारी कर रही थी कि परेशबाबू स्वयं ही उसके यहाँ आ गए।

प्रतिदिन साँझ के इस समय परेशबाबू अपने घर की बगिया में अकेले सिर झुकाए मन-ही-मन सोचते हुए टहला करते हैं। साँझ के पवित्र अंधकार से धीरे-धीरे मन को माँजकर काम-काज के दिन के दाग मानो धो डालते हैं। और अंत में निर्मल शांति का संचय करके रात के विश्राम के लिए तैयार हो जाते हैं। आज जब परेशबाबू अपने शाम के एकांत ध्यान की शांति छोड़कर, चिंतित मुख लेकर सुचरिता के पास आ खड़े हुए तब सुचरिता के स्नेहपूर्ण मन को वैसी ही ठेस लगी जैसे, जिस शिशु को खेल में लगे रहना चाहिए उसे चोट से चुपचाप पड़ा देखकर लगती है।

मृदु स्वर में परेशबाबू ने कहा, "राधो, सब सुन लिया है न?"

सुचरिता ने कहा, "हाँ बाबा सब सुना है, किंतु तुम इतना सोचते क्यों हो?"

परेशबाबू बोले, "और तो मैं कुछ नहीं सोचता, मेरी सारी सोच यही है कि ललिता ने जो तूफान खड़ा कर दिया है उसकी पूरी चोट वह सह सकेगी कि नहीं। उत्तेजना के वशीभूत कई बार हम लोगों के मन में अंधी स्पर्धा जाग उठती है, "लेकिन जब उसका फल मिलना आरंभ होता है तब सहसा किसी-किसी की उसके भार सहने की शक्ति चली जाती है। क्या ललिता ने सब भला-बुरा अच्छी तरह सोचकर निश्चय कर लिया है कि उसके लिए क्या श्रेय है?"

सुचरिता ने कहा, "स्माज की ओर से कोई उत्पीड़न ललिता को कभी नहीं हरा सकेगा, यह मैं दावे से कह सकती हूँ।"

परेशबाबू ने कहा, "मैं यह बात पूरी तरह स्पष्ट जान लेना चाहता हूँ कि ललिता केवल गुस्से में आकर विद्रोह या ज़िद तो नहीं कर रही है?"

सिर झुकाकर सुचरिता ने कहा, "नहीं बाबा, ऐसी बात होती तो मैं उसकी बात पर ज़रा भी ध्यान न देती। उसके मन में बहुत गहरे में जो बात थी, वही अचानक चोट खाकर बाहर आ गई है। अब किसी तरह इसे दबा देने का प्रयत्न करने से ललिता-जैसी लड़की के लिए अच्छा नहीं होगा। बाबा, विनय बाबू आदमी तो बहुत अच्छे हैं!"

परेशबाबू ने कहा, "अच्छा, किंतु विनय क्या ब्रह्म-समाज में आने को राज़ी होगा?"

सुचरिता ने कहा, "यह तो ठीक-ठीक नहीं बता सकती। अच्छा बाबा, एक बार गौर बाबू की माँ से मिल आऊँ?"

परेशबाबू ने कहा, "मैं भी सोच रहा था, तुम हो आओ तो अच्छा हो।"

49.आनंदमई के घर से एक बार रोज़ सबेरे विनय अपने घर का चक्कर लगा आता था। आज सबेरे आने पर उसे एक चिट्ठी मिली। चिट्ठी पर किसी का नाम नहीं था। ललिता से विवाह करके विनय किसी तरह सुखी नहीं हो सकेगा और ललिता का भी उससे अहित होगा, यह बताकर चिट्ठी में लंबा उपदेश दिया गया था और अंत में यह भी लिखा था कि इस सबके बाद भी विनय ललिता से विवाह का इरादा न छोड़े तो एक बात और भी सोचकर देख ले कि ललिता के फेफड़े कमज़ोर हैं और डॉक्टरों ने यक्ष्मा की आशंका बताई हैं।

चिट्ठी पाकर विनय हक्का-बक्का हो गया। कोई ऐसी बातें झूठ-मूठ भी गढ़ सकता है, विनय ने यह कभी नहीं सोचा था समाज की बाधा के कारण ललिता के साथ विनय का विवाह किसी तरह संभव नहीं है, यह तो मानी हुई बात थी। इसीलिए तो ललिता के प्रति अपने हृदय के अनुराग को विनय अब तक अपराध ही मानता आया था। लेकिन जब उसे ऐसी चिट्ठी मिली मिली है तो निश्चय ही समाज में इस बारे में विस्तार से चर्चा होती रही हैं इससे समाज के लोगों के बीच ललिता कितनी अपमानित हुई है, यह सोचकर उसका मन अत्यंत क्षुब्ध हो उठा। उसके नाम के साथ खुल्लमखुल्ला ललिता का नाम समाज के लोगों के मुँह पर आता रहा है, इससे वह बहुत ही लज्जित और संकुचित होने लगा। उसे बार-बार यही लगने लगा कि ललिता उसके साथ परिचय को अभिशाप मानकर धिक्कार रही होगी। उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि अब ललिता कभी उसकी ओर ऑंख उठाकर देखना भी पसंद नहीं करेगी।

हाय ये मानव हृदय! इस तीव्र ग्लानि के बीच भी विनय के मन के भीतर एक निविड़ गंभीर, सूक्ष्म और तीव्र आनंद हिलोर ले रहा था जिसे वह सँभाल नहीं पाता था, जो सारी लज्जा और अपमान को अस्वीकार कर देता था। इसी आनंद को किसी प्रकार दबा देने के लिए वह अपने घर के बरामदे में तेज़ी से टहलने लगा। लेकिन सबेरे के प्रकाश से झरता हुआ एक मदिर भाव उसके मन पर छा गया। जो फेरी वाले राह पर हाँक लगाते हुए चले जा रहे थे उनकी हाँक के स्वर भी जैसे उसके हृदय में एक गहरी चंचलता जगाने लगे। बाहर के लोगों की निंदा ही मानो एक रेले की तरह ललिता को बहाकर उसके हृदय के किनारे पर छोड़ गई। समाज से बहकर आई हुई ललिता की इस मूर्ति को वह और दूर न हटा सका। उसका मन केवल यही पुकारने लगा कि 'ललिता मेरी है, एक मात्र मेरी है।' और कभी उसे मन में दुर्दम होकर इतने ज़ोर से यह बात कहने का साहस नहीं किया था, आज जब बाहर ही ऐसी ध्वनि इस तरह अचानक उठी तब विनय किसी तरह अपने मन को और 'चुप-चुप' कहकर दबाए न रख सका।

जब इस प्रकार से चंचल होकर विनय अपने बरामदे में चक्कर काट रहा था तब सहसा उसने देखा, सड़क पर हरानबाबू चले आ रहे हैं। वह फौरन समझ गया कि वह उसी के पास आ रहे हैं। यह भी उसने निश्चित जान लिया कि उस गुमनाम चिट्ठी के पीछे एक बड़ा षडयंत्र है। विनय ने रोज़ की तरह अपनी स्वभाव-सिध्दि प्रगल्भता नहीं दिखाई। हरानबाबू को कुर्सी पर बिठाकर चुपचाप उनकी बात की प्रतीक्षा करता रहा।

अंत में हरानबाबू बोले, "विनय बाबू, आप तो हिंदू हैं न?"

विनय ने कहा, "हाँ, वह तो हूँ ही।"

हरानबाबू ने कहा, "मेरे इस सवाल का बुरा न मानें। कई बार हम लोग चारों तरफ की स्थिति सोचे-विचारे बिना अंधे होकर चलने लगते हैं- इससे संसार में दु:ख फैलता है ऐसी हालत में अगर कोई ये सवाल उठाए कि हम क्या हैं, हमारी सीमा कहाँ है, हमारे आचरण का फल कहाँ-कहाँ तक पहुँचता है, तब ये सवाल बुरे लगने पर उस आदमी को मित्र ही समझना चाहिए।"

हँसने की कोशिश करते हुए विनय ने कहा, "आप व्यर्थ इतनी भूमिका बाँध रहे हैं। कोई अप्रिय सवाल सामने आने पर मैं किसी प्रकार अत्याचार कर बैठूँ, मेरा ऐसा स्वभाव नहीं है। आप बेखटके मुझसे चाहे जो सवाल पूछ सकते हैं।"

हरानबाबू ने कहा, "मैं आप पर जान-बूझकर कोई अपराध करने का आक्षेप लगाना नहीं चाहता। लेकिन बिना-सोचे समझे ग़लती करने का परिणाम भी भयंकर हो सकता है, शायद यह तो आपको समझाने की ज़रूरत न होगी।"

मन-ही-मन विनय ने विरक्त होते हुए कहा, "ज़रूरत नहीं है तो छोड़िए-असल बात कहिए।"

हरानबाबू ने कहा, "आप जब हिंदू-समाज में हैं और उसे छोड़ना भी आपके लिए संभव नहीं है, तब परेशबाबू के परिवार में आपका इस ढंग से आना-जाना क्या ठीक है जिससे उनके समाज में उनकी लड़कियों के बारे में कोई गलत चर्चा उठ सकती हो?"

विनय ने गंभीर होकर कुछ देर चुप रहकर कहा, "देखिए पानू बाबू, किस बात से समाज के लोग कौन-सी बात गढ़ लेते हैं, वह बहुत कुछ उनके अपने स्वभाव पर निर्भर करता है- उसकी सारी ज़िम्मेदारी मैं नहीं ले सकता। अगर परेशबाबू की लड़कियों के बारे में आप लोगों के समाज में किसी प्रकार की गलत चर्चा खड़ी हो सकती है, तो इसमें लज्जा की बात उनके लिए उतनी नहीं है जितनी आपके समाज के लिए।"

हरानबाबू ने कहा, "किसी कुमारी को अपने घरवालों का साथ छोड़कर किसी गैर आदमी के साथ अकेले, स्टीमर में सैर करने दी जाए तो इसकी चर्चा करने का अधिकार कौन-से समाज को होगा, यही बात मैं पूछता हूँ।"

विनय ने कहा, "बाहर की घटना को भीतर के अपराध के साथ आप लोग भी अगर एक ही आसन पर बिठाने लगे, तब फिर हिंदू-समाज छोड़कर आपको ब्रह्म-सामाज में आने की क्या जरूरत थी? खैर,पानू बाबू, ये सब बातें लेकर बहस करने की कोई ज़रूरत मैं नहीं देखता। मेरा क्या कर्तव्य है यह मैं स्वयं सोच-विचार के बाद तय करूँगा, इस बारे में आप मेरी कोई मदद नहीं कर सकते।"

हरानबाबू ने कहा, "मैं आपको ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहता, मुझे अंत में इतना ही कहना है कि आपको अब दूर ही रहना होगा, नहीं नहीं तो यह आपका बड़ा अन्याय होगा। परेशबाबू के परिवार में प्रवेश करके आप लोगों ने केवल अशांति की ही सृष्टि की है, उनका कितना अनिष्ट आप लोगों ने किया हैं आप नहीं जानते।"

हरानबाबू के चले जाने पर एक व्यथा काँटे-सी विनय के मन में चुभने लगी। सरल-हृदय, उदार-चित्त परेशबाबू कितने सम्मान के साथ उन दोनों को अपने घर और परिवार के बीच बुला ले गए थे। विनय ने चाहे बिना जाने-समझे इस ब्रह्म-परिवार में अपने अधिकार की सीमा का पग-पग पर उल्लंघन किया था फिर भी उनके स्नेह से वह कभी वंचित नहीं हुआ। इस परिवार के बीच विनय की प्रकृति ने एक ऐसा गहरा सहारा पाया था ैसा उसे और कहीं नहींमिला। इन सबसे परिचय होने के बाद मानो विनय अपनी एक एक अलग और विशेष सत्ता को पहचान सका है जिस परिवार में उसे इतना मान, इतना आनंद, ऐसा आश्रय मिला, उसी परिवार के लिए विनय की स्मृति ऐसी हो जाएगी कि हमेशा काँटे-सी चुभती रहे! परेशबाबू की लड़कियों पर अपने अपमान की कालिख पोत दी। ललिता के पूरे आगत-जीवन पर उसने कलंक का इतना बड़ा लगा टीका दिया! इसका क्या प्रतिकार हो सकता है? हाय, समाज नाम की चीज़ ने सच्चाई के मार्ग में कितनी बड़ी बाधा खड़ीकर दी है! ललिता के साथ विनय के मिलन में यथार्थ बाधा कोई नहीं है। जो देवता दोनों के हृदय में बसे हैं वही जानते हैं कि विनय ललिता के सुख और मंगल के लिए अपना सारा जीवन उत्सर्ग कर देने को तैयार है- वही देवता तो प्रेम के आकर्षण में बाँध विनय को ललिता के इतना निकट ले आए हैं, उनकी शाश्वत धर्म-विधि में तो कहीं बाधा नहीं है। तब ब्रह्म-समाज के जिस देवता की पूजा पानू बाबू जैसे लोग करते हैं, वह क्या कोई दूसरे हैं? वह क्या मनुष्य के मन के अंतरतम के देवता नहीं हैं?

ललिता के साथ उसके मिलन के मार्ग में कोई निषेध अपना विकराल मुँह बाए खड़ा हो, और वह केवल समाज को ही मानकर मानव-मात्र को प्रभु का आदेश न मानें, तो वही निषेध क्या पाप न होगा? लेकिन क्या पता, ललिता के लिए भी यह निषेध ही बलवान हो। फिर शायद ललिता विनय को.... कितने संशय हैं, इनका हल कहाँ मिलेगा।

50.विनय के घर जिस समय हरानबाबू आए हुए थे उसी समय अविनाश आनंदमई को यह सूचना दे रहा था कि विनय के साथ ललिता का विवाह तय हो गया है।

आनंदमई ने कहा, "यह कभी सच नहीं हो सकता।"

अविनाश बोला, "क्यों सच नहीं हो सकता? क्या यह विनय के लिए असंभव है?"

आनंदमई ने कहा, "वह मैं नहीं जानती। लेकिन इतनी बड़ी बात विनय मुझसे छिपाकर कभी न रखता।"

बार-बार अविनाश ने दुहराया था कि उसने यह ख़बर ब्रह्म-समाज के लोगों से ही सुनी है, और इस पर पूरा विश्वास किया जा सकता है। विनय की अंत में ऐसी ही शोचनीय गति होगी, यह अविनाश बहुत पहले ही जानता था, यहाँ तक कि उसने गोरा को भी इस बारे में सचेत कर दिया था। आनंदमई को यह सब बताकर बड़े आनंद से भरकर वह निचली मंज़िल में महिम को भी यह संवाद सुनाने गया।

आज विनय के आने पर आनंदमई उसका चेहरा देखकर ही समझ गईं कि उसके मन में कोई भारी क्षोभ पैदा हुआ है। भोजन कराकर उन्होंने उसे अपने कमरे में ले जाकर बैठाया और तब उससे पूछा, "विनय, तुझे क्या हुआ है बता तो?"

विनय ने कहा, "माँ, यह मेरी चिट्ठी पढ़ के देखो।"

आनंदमई को चिट्ठी पढ़ चुकने पर विनय ने कहा, 'आज सबेरे पानू बाबू मेरे यहाँ आए थे- मुझे बहुत डाँट-फटकारकर चले गए।"

आनंदमई ने पूछा, "क्यों?"

विनय ने कहा, "उन्होंने कहा, मेरे आचरण के कारण उनके समाज में परेशबाबू की लड़कियों की निंदा हो रही है।"

आनंदमई ने कहा, "लोग जो कहते हैं कि ललिता के साथ तेरा विवाह पक्का हो गया है- इसमें मुझे तो निंदा की कोई बात नहीं दीखती।"

विनय ने कहा, "विवाह होने का कोई मार्ग होता तो निंदा की कोई बात न उठती। लेकिन जहाँ उसकी कोई संभावना नहीं है वहाँ ऐसी अफवाह फैलाना कितना बड़ा अन्याय है! खासकर ललिता के बारे में ऐसी बात उड़ा देना तो निरी कायरता है।"

आनंदमई ने कहा, "तुममें, ज़रा भी पौरुष हो वीनू, तो तू इस कायतरा के चंगुल से ललिता को सहज ही बचा सकता है।"

विस्मित होकर विनय ने कहा, "कैसे, माँ?"

आनंदमई ने कहा, "कैसे क्या! ललिता से विवाह करके, और कैसे?"

विनय ने कहा, "तुम क्या चाहती हो, माँ! अपने विनय को तुम न जाने क्या समझती हो। तुम सोचती हो विनय के एक बार 'मैं ब्याह करूँगा'कहने से ही दुनिया में और किसी को कुछ कहने लायक नहीं रहेगा, जैसे सब मेरे इशारे की प्रतीक्षा में मेरा मुँह ताकते बैठे हैं।"

आनंदमई ने कहा, "तेरे फालतू बातें सोचने की तो कोई ज़रूरत मुझे नहीं दीखती। अपनी तरफ से तू जितना कर सकता है उतना कर दे, बस! तू इतना तो कह सकता है कि "मैं विवाह करने को तैयार हूँ'?"

विनय ने कहा, "मेरा ऐसी असंगत बात कहना क्या ललिता के लिए और भी अपमानजनक न होगा?"

"तू इसे असंगत क्यों समझता है? जब तुम दोनों के विवाह की चर्चा होने ही लगी है तो अवश्य विवाह को संगत मानकर ही तो उठी है। मैं कहती हूँ, तुझे कोई संकोच करने की ज़रूरत नहीं है।"

विनय ने कहा, "लेकिन माँ, गोरा की बात भी तो सोचनी होगी।"

दृढ़ स्वर में आनंदमई ने कहा, "न बेटा, इसमें गोरा की बात सोचने की कोई बात नहीं है। मैं जानती हूँ वह नाराज़ होगा, मैं भी नहीं चाहती कि वह तुझ पर नाराज़ हो, लकिन तू करेगा क्या? ललिता के प्रति अगर तुझमें श्रध्दा है, तो तू यह कैसे देख सकता है कि वह समाज में सदा के लिए अपमानित हो जाए?"

लेकिन यह तो बड़ी कठिन बात थी। जेल की सज़ा पाए हुए जिस गोरा के प्रति विनय के प्यार की धारा दुगने वेग से बहने लगी थी, उसके लिए वह इतना बड़ा आघात तैयार करके कैसे रख सकेगा? फिर उसके संस्कार! बुध्दि से समाज को फलाँगकर जाना सरल है, लेकिन कर्म से उसको फलाँगने का मौका आने पर छोटी-बड़ी कितनी ही अड़चनें दीखती हैं! एक तरफ अज्ञात का भय, दूसरी तरफ जो अभ्यस्त नहीं हैं उसका विरोध, दोनों कोई युक्ति दिए बिना पीछे की ओर धकेलने लगते हैं।

विनय ने कहा, "माँ, तुम्हें जितना ही देखता हूँ, अचरज बढ़ता जाता है। तुम्हारा मन एकदम इतना साफ हो गया? तुम्हें क्या ज़मीन पर चलना नहीं पड़ता- तुम्हें क्या भगवान ने पंख दिए हैं? तुम्हें कहीं कोई अटक ही नहीं दीख पड़ती।"

हँसकर आनंदमई ने कहा**, "**ईश्वर ने मुझे अटकाने लायक कुछ रखा ही नहीं। सब बिल्कुल साफ कर दिया है**!"**

विनय ने कहा, "लेकिन माँ, मुँह से मैं चाहे जो कहूँ, मन तो अटकता है। इतना समझ-बूझ, पढ़-सुनकर, तर्क करके, अचानक दीखता है कि मन तो निरा मूर्ख ही रह गया है।"

इसी समय कमरे में आकर महिम ने एकाएक विनय से ऐसे भद्दे ढंग से ललिता के बारे में प्रश्न किया कि वह तिलमिला उठा। लेकिन किसी तरह अपने को सँभालकर वह सिर झुकाए चुप बैठा रहा। इस पर महिम सभी के बारे में तीखे व्यंग्य से भरी अपमानजनक बातें कहकर चले गए। जाते-जाते बता गए, "इस तरह विनय को जाल में फँसाकर उसका सर्वनाश करने के लिए ही परेशबाबू के घर में बड़ी निर्लज्जता से आयोजन होता रहा था। विनय भोला था इसीलिए उनके फंदे में फँस गया- गोरा को वे लोग फँसा सकते तब तो देखते। लेकिन वह तो टेढ़ी खीर है!"

विनय चारों ओर लांछित होकर स्तब्ध बैठा रह गया। आनंदमई ने कहा, "जानता है विनय, इस समय तेरा क्या कर्तव्य है?"

मुँह उठाकर विनय ने उनकी ओर देखा। आनंदमई बोलीं, "तुझे एक बार परेशबाबू के पास जाना चाहिए। उनसे बात होते ही मामला साफ हो जाएगा।

51.आनंदमई को अचानक आए देखकर सुचरिता ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "मैं तो अभी आपकी तरफ जाने के लिए तैयार हो रही थी।"

हँसकर आनंदमई ने कहा, "तुम तैयार हो रही हो यह तो मैं नहीं जानती थी, लेकिन जिस लिए तैयार हो रही थी वह खबर पाकर मुझसे रहा नहीं गया- चली आई।" आनंदमई को खबर मिल गई है, यह जानकर सुचरिता को और भी आश्चर्य हुआ। आनंदमई बोलीं, "बेटी, विनय को मैं अपने बेटे-सा ही मानती हूँ। उसी विनय के नाते, जब तुम लोगों को नहीं भी जानती थी तब भी मन-ही-मन अनेक आशीर्वाद दिया करती थी। तुम लोगों के साथ कोई अन्याय हो रहा है, मैं यह खबर सुनकर कैसे रह सकती हूँ? मुझसे तुम लोगों का कोई उपकार हो सकेगा कि नहीं, यह तो नहीं जानती-लेकिन मन न जाने कैसा हो रहा था, इसीलिए तुम्हारे पास दौड़ी आई। बेटी, विनय की ओर से तो कोई अन्याय नहीं हुआ है?"

सुचरिता ने कहा, "बिल्कुल नहीं। जिस घटना को लेकर सबसे ज्यादा आंदोलन हो रहा है, उसके लिए ललिता ही उत्तरदाई है। ललिता अचानक किसी से कुछ कहे बिना स्टीमर पर सवार हो जाएगी, इसकी विनय बाबू ने कल्पना भी नहीं की थी। लोग इस ढंग से बातें बना रहे हैं मानो उन दोनों ने गुप-चुप सलाह कर रखी हो। उधर ललिता ऐसी तेजस्विनी लड़की है कि वह प्रतिवाद करने या असल में बात क्या हुई थी, इसकी कोई सफाई देने कभी नहीं जाएगी।"

आनंदमई ने कहा, "लेकिन इसका कुछ तो उपाय करना होगा। यह सब बातें जब से विनय ने सुनी हैं उसका मन बड़ा बेचैन हो गया है, वह तो अपने को ही अपराधी मानें बैठा है।"

सुचरिता ने अपना लाल होता हुआ चेहरा कुछ झुकाकर कहा, "अच्छा, आप क्या सोचती हैं, विन बाबू.... "

सकुचाती हुई सुचरिता को उसकी बात पूरी न करने देकर आनंदमई ने कहा, "देखो बेटी, यह तो मैं कह सकती हूँ कि विनय को ललिता के लिए जो भी करने को कहोगी वह वही करेगा। विनय को बचपन से ही देखती आ रही हूँ- उसने जब एक बार आत्म समर्पण कर दिया तब कुछ बचाकर नहीं रख सकेगा। बल्कि इसीलिए बार-बार मैं डरती हूँ कि कहीं उसका मन उसे ऐसी जगह न लें पहुँचे जहाँ से उसे कुछ मिलने की कोई उम्मीद न हो।"

सुचरिता के मन से एक बोझ उतर गया। वह बोली, "ललिता की सम्मति के लिए आपको कोई चिंता न करनी होगी- उसका मन मैं जानती हूँ। लेकिन विनय बाबू क्या अपना समाज छोड़ देने को राजी होंगे?"

आनंदमई ने कहा, "हो सकता है कि समाज उसे छोड़ दे, लेकिन वह क्यों खामखाह आगे बढ़कर समाज को छोड़ने जाएगा? उसकी ज़रूरत क्या है?"

सुचरिता ने कहा, "यह आप क्या कह रही हैं, माँ! विनय बाबू हिंदू-समाज में रहकर ब्रह्म घर की लड़की से ब्याह करेंगे?"

आनंदमई ने कहा, "अगर वह करने को राज़ी हो तो तुम लोगों को इसमें क्या एतराज़ है?"

सुचरिता बड़ी उलझन में पड़ गई। बोली, "यह कैसे हो सकेगा, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा।"

आनंदमई ने कहा, "मुझे तो यह बिल्कुल सीधी बात जान पड़ती है।, बेटी! देखो, मेरे ही घर में जो नियम चलता है उस नियम से मैं नहीं चल सकती, इसीलिए बहुत-से लोग मुझे ख्रिस्तान कहते हैं। किसी काज-कर्म के समय जान-बूझकर मैं अलग ही रहती हूँ। तुम सुनकर हँसोगी- गोरा मेरे कमरे में पानी नहीं पीता। लेकिन इसीलिए मैं क्यों यह कहने जाऊँगी कि 'यह घर मेरा घर नहीं है, यह समाज मेरा समाज नहीं है?' ऐसा मैं तो कह ही नहीं सकती, गालियाँ और निंदा सब सिर-माथे पर लेकर भी मैं इस घर, इस समाज को अपनाए हुए हूँ, इसमें मुझे तो ऐसी कोई अड़ाचन नहीं दीखती। कभी ऐसी मुश्किल आ ही गई कि आगे ऐसे न चल सका, तब जो रास्ता ईश्वर दिखाएँ उसी पर चल पड़ूँगी- लेकिन अंत तक, जो मेरा है उसको अपना ही कहूँगी, वही यदि मुझे स्वीकार न करे तो वह जाने।"

सुचरिता के सामने बात अब भी स्पष्ट नहीं हुई। उसने कहा, "लेकिन, ब्रह्म-समाज की जो राय है अगर विनय बाबू की...."

आनंदमई ने कहा, "उसकी राय भी तो वैसी ही है ब्रह्म-समाज की राय कोई दुनिया से अलग तो नहीं है? तुम लोगों के पत्रों में जो सब उपदेश छपते हैं, वह अक्सर उन्हें पढ़कर मुझे सुनाता है, कहीं कोई अनोखी बात तो मुझे नहीं जान पड़ी।"

इसी समय 'सुचि दीदी! पुकारती हुई ललिता कमरे में आकर आनंदमई को देखते ही लज्जा से लाल हो गई। सुचरिता का चेहरा देखकर ही वह जान गई कि अब तक उसी की बात हो रही थी। किसी तरह कमरे से भाग जाना संभव होता तो उसकी जान बचती, लेकिन अब भाग सकना संभव नहीं था।

आनंदमई कह उठीं, "आओ, ललिता बेटी, आओ!" और ललिता का हाथ पकड़कर उसे उन्होंने अपने बहुत नज़दीक खींचकर बिठा लिया, मानो ललिता उनकी कुछ विशेष अपनी हो गई है।

आनंदमई ने अपनी पहली बात का सिलसिला आगे बढ़ाते हुए सुचरिता से कहा, "देखो बेटी, अच्छे के साथ बुरे का मेल बैठना ही सबसे कठिन काम है, लेकिन दुनिया में फिर भी वह हो ही जाता है, और उसमें भी सुख-दु:ख से दिन कटते जाते हैं। हर समय उसमें बुरा ही हो ऐसा नहीं है,भला भी होता है। यह भी जब संभव हो सकता है तब मत में थोड़ा-सा अंतर होने से ही क्यों दो जनों का मेल नहीं हो सकेगा, मेरी तो यह समझ में ही नहीं आता। मनुष्यों का असली मेल क्या मतवाद में है?"

सुचरिता सिर झुकाए बैठी रही। आनंदमई ने कहा, "तुम्हारा ब्रह्म-समाज भी क्या मनुष्य से मनुष्य को नहीं मिलने देगा? ईश्वर ने अंदर से जिनको एक बनाया है, तुम्हारा समाज बाहर से उन्हें अलग कर रखेगा? जो समाज छोटे अनमेल नहीं मानता, बड़े मेल में सभी को मिला देता है,ऐसा समाज क्या दुनिया में कहीं नहीं है? मनुष्य ईश्वर के साथ क्या ऐसे झगड़ा ही करता रहेगा? समाज नाम की चीज़ क्या केवल इसीलिए बनी है?"

इस विषय को लेकर आनंदमई इतने आंतरिक उत्साह से उसकी विवेचना करने लगीं, वह क्या सिर्फ ललिता के साथ विनय के विवाह की कठिनाई दूर करने के लिए ही? इस संबंध में सुचरिता के मन में एक दुविधा को पहचानकर उनका समूचा मन जो उस दुविधा को दूर कर देने के लिए आतुर हो उठा, उसमें क्या और भी एक उद्देश्य नहीं था? सुचरिता यदि इस तरह संस्कार से बँधी रहेगी तो कैसे चलेगा, विनय के ब्रह्म हुए बिना विवाह नहीं हो सकेगा, अगर यही सिध्दांत स्थिर ठहरेगा, तब तो आनंदमई ने पिछले दिनों में बेहद दु:ख के समय भी जो आशा की प्रतिमा गढ़कर खड़ी की है वह धूल में मिल जाएगी। आज ही विनय ने उनसे एक प्रश्न पूछा था, कहा था, "माँ, क्या ब्रह्म-समाज में नाम लिखाना होगा? वह भी क्या स्वीकार कर लूँगा?"

आनंदमई ने कहा था, "नहीं-नहीं, उसकी तो कोई ज़रूरत नहीं लगती।"

विनय ने पूछा था, "वे लोग यदि ज़ोर डालें तो?"

बहुत देर तक चुप रहकर आनंदमई ने कहा था, "नहीं, इस बात में ज़ोर नहीं चलेगा।"

आनंदमई की बातों में सुचरिता ने कोई भाग नहीं लिया, वह चुप ही रही। आनंदमई समझ गईं कि सुचरिता का मन अभी गवाही नहीं दे रहा है। मन-ही-मन वह सोचने लगीं- मेरा मन जो समाज के सारे संस्कार काट सका वह तो मात्र उसी गोरा के स्नेह के कारण। तब क्या सुचरिता का मन गोरा की ओर आकृष्ट नहीं है? अगर होता तो इतनी छोटी-सी बात इतनी बड़ी न हो उठती।

आनंदमई का मन उदास हो गया। गोरा के जेल से छूटने में अब दो-एक दिन ही शेष थे। मन-ही-मन वह सोच रही थी कि उसके लिए एक सुख का मार्ग उपस्थिति हो रहा है। जैसे भी हो इसबार गोरा को बाँध ही देना है, नहीं तो वह कहाँ किस मुश्किल में पड़ेगा इसका कोई ठिकाना नहीं है। लेकिन गोरा को बाँध सकना चाहे जिस लड़की के बस का तो नहीं है। इधर गोरा का विवाह हिंदू-समाज की किसी लड़की से करना भी तो अन्याय होगा- इसीलिए अब तक कितनी ही लड़कियों के अभिभावकों की दरखास्त वह अस्वीकार कर चुकी है। गोरा कहता रहा है, 'मैं विवाह नहीं करूँगा'-माँ होकर भी उन्होंने कभी इसका विरोध नहीं किया। लोग इस पर अचरज़ करते रहे हैं। गोरा के दो-एक लक्षण देखकर इस बार वह मन-ही-मन प्रसन्न हुई थी। इसीलिए सुचरिता के नीरव विरोध से उन्हें पीड़ा पहुँची। लेकिन वह सहज ही पतवार छोड़ देने वाली नहीं है, उन्होंने मन-ही-मन कहा-अच्छा देखा जाएगा।

गोरा - Gora in Hindi

1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय